दैनिक जागरण
प्रकृति सबसे बड़ी रचयिता है

व्यर्थ का बहिष्कार

यह अच्छा नहीं हुआ कि एक साथ चुनाव कराने के मसले पर प्रधानमंत्री की ओर से बुलाई गई बैठक में कांग्रेस समेत आठ राजनीतिक दलों ने भाग लेना भी उचित नहीं समझा। समझना कठिन है कि इन दलों के जो नेता यह कहते हुए दिख रहे हैं कि इस या उस कारण एक साथ चुनाव कराना ठीक नहीं उन्होंने अपनी बात उक्त बैठक में कहने की जहमत क्यों नहीं उठाई? क्या यह दिखाने के लिए कि वे प्रधानमंत्री की ओर से बुलाई गई बैठक का भी बहिष्कार कर सकते हैं? आखिर इस नतीजे पर क्यों न पहुंचा जाए कि ये राजनीतिक दल केवल विरोध के लिए विरोध दर्ज कराने की मानसिकता से ग्रस्त हैं? आखिर ऐसे दलों से यह अपेक्षा कैसे की जाए कि वे राष्ट्रीय महत्व के मसलों पर आम सहमति की राजनीति के पक्षधर हैं? ध्यान रहे कि यही दल रह-रहकर यह शोर मचाते हैं कि मोदी सरकार सहमति की राजनीति पर यकीन नहीं रखती। सर्वदलीय बैठक का बहिष्कार नकारात्मक राजनीति का प्रमाण ही नहीं, इस बात का सूचक भी है कि इस लोकसभा में भी विरोध की खातिर विरोध की राजनीति जारी रहने वाली है। सर्वदलीय बैठक से दूरी बनाने वाले दल चाहे जो तर्क दें, वे इससे अनजान नहीं हो सकते कि बार-बार होने वाले चुनाव देश और खुद उनके संसाधन की बर्बादी का कारण बनते हैं। आखिर यह कितना उचित है कि करीब ढाई महीने लंबी चुनाव प्रक्रिया से मुक्त होते ही हरियाणा, महाराष्ट्र आदि राज्यों के विधानसभा चुनाव की तैयारी होने लगी है? इन राज्यों के चुनावों के बाद कुछ और राज्यों में चुनाव की तैयारी होने लगेगी।

यह मानने के अच्छे-भले कारण हैं कि एक साथ चुनाव का विरोध कर रहे दल अपने संकीर्ण स्वार्थों के आगे देश हित की चिंता करने के लिए तैयार नहीं। आम चुनाव के अतिरिक्त रह-रहकर होते रहने वाले विधानसभा चुनावों के कारण समय और संसाधन की जो बर्बादी होती है वह एक तरह से राष्ट्रीय क्षति होती है। यह क्षति इस कारण होती है, क्योंकि पक्ष-विपक्ष बार-बार के चुनावों के कारण शासन-प्रशासन को बेहतर बनाने और जन समस्याओं के समाधान पर पर्याप्त ध्यान नहीं दे पाते। आज यदि हमारा देश अनेक विकासशील देशों से पीछे है तो शायद इसका एक कारण रह-रहकर होने वाले चुनावों में समय और धन की बर्बादी भी है। कल्पना करें कि अगर 1967 के बाद लोकसभा और विधानसभाओं के चुनाव एक साथ ही हो रहे होते तो देश का कितना पैसा और वक्त बचा होता? एक साथ चुनाव के विरोध में दी जा रही दलीलों का ज्यादा मतलब इसलिए नहीं, क्योंकि आजादी के बाद 1967 तक लोकसभा और विधानसभाओं के चुनाव एक साथ ही होते रहे। आखिर जो पहले संभव था वह अब क्यों नहीं हो सकता? सवाल यह भी है कि जब हाल के लोकसभा चुनावों के साथ ओडिशा, आंध्र, सिक्किम और अरुणाचल के विधानसभा चुनाव हो सकते हैं तो फिर बाकी राज्यों के क्यों नहीं हो सकते? यह दलील भी खोखली ही अधिक है कि एक साथ चुनावों से क्षेत्रीय दल घाटे में रहेंगे, क्योंकि ओडिशा और आंध्र में क्षेत्रीय दल ही सरकार बनाने में सफल रहे हैं।

पुनर्वास नीति में आस्था

झारखंड में कभी खौफ का पर्याय रहा माओवाद शनैः शनैः दम तोड़ रहा है। नक्सली विचारधारा भी पश्चाताप की आग में पिघलने लगी है। सरकार की पुनर्वास नीति भी उनको मुख्यधारा की ओर मोड़ने में कारगर हो रही है। इसकी बानगी सोमवार को दुमका में दिखी जब राज्य के हार्डकोर नक्सलियों में शुमार पीसी दी, किरण टुडू, सिद्धो मरांडी समेत आधा दर्जन माओवादियों ने हथियार डाल दिए। इनमें कई पाकुड़ के एसपी अमरजीत बलिहार की हत्या में शामिल थे। बाकायदा सरकार की पुनर्वास नीति में आस्था जताते हुए दुमका एसपी वाईएस रमेश के समक्ष छह नक्सलियों ने सरेंडर कर दिया। संताल परगना के डीआइजी राजकुमार लकड़ा ने इस दिन को दुमका के लिए स्वर्णाक्षरों में लिखा जाने वाला बताया। वहीं एसपी ने कहा कि हार्डकोर का सरेंडर करना बताता है कि पुलिस अगर सख्त है तो संवेदनशील भी। और ऐसा है भी। नक्सल आंदोलन को ध्वस्त करने की दिशा में यह सरकार की बड़ी सफलता है। यह सच्चाई है कि माओवादी यदि मुख्यधारा में लौट आते हैं तो कई इलाके जहां विकास नहीं पहुंच सका है, वे भी दमक उठेंगे। माओवादियों को मुख्यधारा में लाने का श्रेय निश्चित ही प्रशासन को दिया जाएगा। पुलिस का मानवीय चेहरा इस मामले में सामने आया। जिन सुरक्षाबलों के खिलाफ नक्सलियों ने हथियार उठाया उन्होंने ही पीसी दी का इलाज करवाया। नक्सलियों ने अपनी जो दास्तां सुनाई उससे साफ होता है कि गरीबी, व्यवस्था के प्रति आक्रोश और अपनों की अनदेखी के कारण वे राह भटक गए। ये हुक्मरानों और नीति नियंताओं को भी आगाह करती है और उनकी जिम्मेदारी बढ़ा देती है। रोजगार के मामले में झारखंड की स्थिति बेहद खराब है। संताल से लेकर कोयलांचल और अन्य इलाकों में पलायन बड़ी समस्या बन चुका है। हर हाथ को काम देने के लिए बेशक सरकार अनेक योजनाएं ला रही है, मगर उन खामियों को दूर करना होगा जिनके कारण गरीब को इसका लाभ ही नहीं मिल पाता। पिछड़े इलाकों में अगर विकास योजनाओं का लाभ लोगों को मिले तो निश्चित तौर पर कोई मासूम ग्रामीणों को भटका नहीं पाएगा।

मुस्लिम विमर्श में बदलाव के संकेत

डॉ. एके वर्मा

आज जरूरत इसकी है कि समाज को बांटने वाले मुस्लिम, दलित, पिछड़ा आदि अनेकानेक विमर्शों को भारतीयता के फ्रेमवर्क में चलाया जाए

भारत में मुस्लिम-विमर्श को हमेशा हिंदू-मुस्लिम और सेक्युलर-सांप्रदायिक चश्मे से देखा गया है। संभवतः इसलिए कि हिंदुओं का प्रतिनिधित्व करने वाली भाजपा को सांप्रदायिक ठहराया जाए और अन्य दल 'स्वघोषित' सेक्युलरवादी बताए जाएं ताकि मुसलमानों को लामबंद कर उनके वोट पर एकाधिकार किया जा सके। इसीलिए कट्टर और सांप्रदायिक मुस्लिम भी सेक्युलर जमात में शरीक हो जाते हैं और सेक्युलर पार्टियों की आड़ में मुस्लिम सांप्रदायिकता को अंजाम देते हैं। कांग्रेस सहित मुलायम और अखिलेश यादव की सपा, मायावती की बसपा, अजीत सिंह की रालोद, लालू प्रसाद यादव की राजद, ममता बनर्जी की तृणमूल और नीतीश कुमार की जदयू कभी भी मुस्लिमों पर अंगुली उठाना पसंद नहीं करतीं। अन्य क्षेत्रीय दलों जैसे आंध्र में वाइएसआर कांग्रेस, तेलुगु देसम पार्टी, केरल में यूडीएफ और एलडीएफ, तमिलनाडु में द्रमुक एवं अन्नाद्रमुक का और तेलंगाना में टीआरएस का यही हाल है। इस तरह की राजनीति से देश, मुस्लिम समाज और इन दलों का ही नुकसान हुआ है। इस राजनीति से समाज में गंगा-जमुनी संस्कृति को पनपने का अवसर ही नहीं मिला, क्योंकि इसने मुसलमानों को हिंदुओं से अलग किया और प्रत्येक सांप्रदायिक विवाद में हिंदुओं और भाजपा को ही दोषी ठहराया।

हमारे नेता कभी यह साहस नहीं कर सके कि मुस्लिम समाज की गलतियों को भी इंगित करें। इससे सांप्रदायिक किस्म के मुसलमानों में यह भाव घर कर गया कि वे कुछ भी करें, सेक्युलर पार्टियां उन्हें कुछ नहीं कहेंगी। परिणामस्वरूप हिंदुओं के प्रति उनका व्यवहार गलत होने लगा जिससे हिंदू-मुस्लिम रिश्तों में कटुता आई। दूसरे हिंदुओं में यह भाव पैदा हुआ कि भाजपा को छोड़ उनकी तरफदारी करने वाला कोई दल नहीं। हिंदू समाज से पिछड़ों और दलितों को निकाल दें तो केवल 19 फीसद सवर्ण कहे जाने वाले लोग बचते हैं। इसीलिए सेक्युलर दल सदैव प्रयत्नशील रहे कि पिछड़ों और दलितों को हिंदू समाज से काट दो तो हिंदू अपने आप समाप्त हो जाएगा। देश के विभाजन का दर्द आज तक सालता है। संविधान बनाने वालों ने भी इसीलिए मुस्लिमों हेतु विशेष मौलिक अधिकारों की व्यवस्था बनाई और जम्मू-कश्मीर के लिए अनुच्छेद 370 के माध्यम से विशेष प्रावधान किया, लेकिन इससे मुस्लिमों की समस्याएं बढ़ी हीं। वे हमेशा अपने को कटा-कटा, असुरक्षित और अल्पसंख्यक समझते रहे जबकि हिंदू समाज ने उन्हें अपने में समाहित करने की कोशिश की। मुसलमानों में उच्च-जाति अर्थात अशरफ मुसलमान सामाजिक, शैक्षणिक और आर्थिक रूप से संपन्न रहे। इसका लाभ उठाकर उन्होंने राजनीति में पैठ बना ली और अपनी पार्टी के इशारों पर पिछड़े और दलित मुस्लिमों अर्थात अजलाफ और अर्जाल मुस्लिमों या पसमांदा मुसलमानों को गोलबंद कर अपनी पार्टी के लिए वोट-बैंक की तरह इस्तेमाल करते रहे। इसके लिए वे हमेशा उन्हें हिंदुओं और खासकर भाजपा का भय दिखाते जिससे वे उनके वोट-बैंक के रूप में बने रहें।

अवधेश राजपूत

विश्व में हिंदू समाज निहायत अल्पसंख्यक समाज है और फिर भी उसके कुछ अपने ही लोग हिंदू होने को जैसे सांप्रदायिकता का पर्याय बनाने पर तुले हैं। यह हिंदुओं को परेशान करता है। नरेंद्र मोदी ने 2014 से इस पूरे विमर्श की दिशा बदल दी जब उन्होंने 130 करोड़ भारतवासियों से 'मन की बात' द्वारा प्रति माह बातचीत शुरू की और सुशासन एवं विकास पर अपना पूरा ध्यान केंद्रित किया। स्वतंत्रता के बाद से अब तक मुस्लिम और भाजपा (पहले जनसंघ) एक-दूसरे से दूर रहे, लेकिन मोदी ने मुसलमानों के प्रति कोई अल्पसंख्यकवादी या सांप्रदायिक दृष्टिकोण नहीं अपनाया। उनका फोकस 130 करोड़ देशवासियों पर ही रहा। उनका मानना है कि मुसलमानों को अल्पसंख्यक बताकर ठगा गया और उनके वोट हथियाए गए। मोदी ने पहली ही पारी में सरकार का फोकस जात-पांत और बहुसंख्यक-अल्पसंख्यक के बजाय ऐसे विकास पर रखा जो सभी को लाभ पहुंचाए। उन्होंने यह सुनिश्चित किया कि विकास योजनाएं कागज पर न होकर जमीन पर दिखाई दें। इससे मुस्लिम समाज को लाभ मिला और वह भी एक ऐसी पार्टी की सरकार से जिसे वे अमूमन वोट देने से कतराते रहे। इसी के साथ मोदी ने मुस्लिम समाज में तत्काल तीन तलाक पर कानूनी पहल की जो कोशिश की, उससे मुस्लिम महिलाओं के एक बड़े वर्ग में आशा की किरण जगी। यह सत्य है कि मुसलमानों में तीन-तलाक के मामले बहुत कम हैं, लेकिन यह जरूर है कि मुस्लिम महिलाओं पर उसकी तलवार हमेशा लटकती रहती है। तत्काल तीन तलाक से संबंधित महिला के परिवार की कई पीढ़ियां बर्बाद हो जाती हैं।

आज कोई भी मुस्लिम परिवार तलाक की त्रासदी नहीं झेल सकता। यही कारण है कि 2014 के लोकसभा चुनावों में जहां देश के आठ फीसद मुस्लिमों ने भाजपा को वोट दिया वहीं 2019 के चुनावों में 14 प्रतिशत मुस्लिमों ने भाजपा को वोट दिया। इससे भाजपा अकेले दम पर देश में 300 सीटों का आंकड़ा पार कर गई। सेक्युलर पार्टियों के लिए यह बेचैनी का सबब जरूर है, लेकिन इसे समावेशी राजनीति की ओर भाजपा के बढ़ते कदम भी कहा जा सकता है। दूसरी पारी की शुरुआत में ही मोदी ने एक ऐसा निर्णय लिया जिसने मुस्लिम समाज का दिल जीत लिया। उन्होंने देश में 5.77 लाख पंजीकृत वक्फ संपत्तियों की 'जीआइएस-मैपिंग' कराने का निर्णय लिया ताकि उनकी पहचान करने और उनसे अतिक्रमण हटाने में मदद मिले। इन संपत्तियों की 'जिओ-टैगिंग' और 'डिजिटलीकरण' से उनके मालिकाना हक में पारदर्शिता आएगी। ऐसी जमीनों पर स्कूल, कॉलेज, अस्पताल, बहु-उपयोगी हॉल, सद्भाव-मंडप आदि बनेंगे। मदरसे के शिक्षकों को विज्ञान, गणित, कंप्यूटर, हिंदी और अंग्रेजी का प्रशिक्षण दिया जाएगा जिससे मुस्लिम समाज की नई पीढ़ी का भला होगा तथा मुस्लिम युवाओं के एक हाथ में कुरान और दूसरे हाथ में कंप्यूटर का मोदी का सपना साकार हो सकेगा। मुस्लिम समाज ने इस पहल की प्रसंशा की है।

पीएम मोदी की मुस्लिम समाज से केवल इतनी ही अपेक्षा है कि वे देश के अन्य नागरिकों की तरह ही रहें और अल्पसंख्यक-सिंड्रोम से बाहर निकलें। आखिर मुस्लिम समाज को हिंदुओं से क्यों द्वेष होना चाहिए? क्या कभी मुस्लिम समाज से हिंदुओं की बेहतरी के लिए कोई आवाज नहीं उठनी चाहिए? 2014 में मोदी सरकार बनने के बाद लाहौर में एक विश्वविद्यालय में व्याख्यान देकर लौटने के बाद मुझे यही लगा कि भारतीय मुस्लिमों को पाकिस्तानी दुष्प्रचार में न पड़कर वहां की जनता की भावनाओं को समझने की कोशिश करनी चाहिए जो आज भारत के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण रखती है। आज जरूरत इसकी है कि समाज को बांटने वाले मुस्लिम, दलित, पिछड़ा, महिला आदि विमर्शों को भारतीयता के फ्रेमवर्क में चलाया जाए जिससे इन विमर्शों का स्वरूप रचनात्मक और सकारात्मक हो सके। इससे ही देश की एकता और अखंडता को अक्षुण्ण रखने में मदद मिलेगी। राजनीति के मोदी-मॉडल ने इस ओर एक मजबूत कदम बढ़ाया है।

(लेखक राजनीतिक विश्लेषक एवं सेंटर फॉर द स्टडी ऑफ सोसायटी एंड पॉलिटिक्स के निदेशक हैं)

response@jagran.com

सबको पेयजल पहुंचाने की चुनौती

रमेश कुमार दुबे

यह विडंबना ही है कि चांद पर उपग्रह भेजने वाले देश की 82 फीसद ग्रामीण आबादी साफ पानी के लिए तरस रही है

आजादी के बाद से ही बिजली-पानी को केंद्र में रखकर चुनाव लड़े गए, लेकिन आम आदमी को बिजली, पानी जैसी बुनियादी सुविधाएं अपेक्षा के अनुरूप उपलब्ध नहीं हो पाईं। 16वीं लोकसभा चुनाव के समय भारतीय जनता पार्टी ने अपने घोषणा पत्र में बिजली, पानी, सड़क, शौचालय जैसी बुनियादी सुविधाएं आम आदमी तक पहुंचाने का वादा किया था। प्रधानमंत्री बनने के बाद नरेंद्र मोदी ने लाल किले की प्राचीर से 1000 दिनों के भीतर अंधेरे में डूबे 18,452 गांवों तक बिजली पहुंचाने का लक्ष्य रखा जिसे तय समय से पहले हासिल कर लिया गया। इसके बाद हर घर को रोशन करने के लिए सौभाग्य योजना शुरू की गई। इसे भी अभूतपूर्व कामयाबी मिली। इसी तरह का अभियान शौचालय बनवाने के लिए चलाया गया। 2014 में जहां 33 फीसद परिवारों तक शौचालय सुविधा थी वहीं 2019 में यह अनुपात बढ़कर 99 फीसद तक पहुंच गया। जिस देश में योजनाओं की लेटलतीफी का रिकॉर्ड रहा हो वहां ऐसी उपलब्धि किसी क्रांति से कम नहीं है।

बिजली आपूर्ति और शौचालय निर्माण को मिली अभूतपूर्व कामयाबी से उत्साहित भाजपा ने 17वीं लोकसभा के चुनाव से पहले जारी संकल्प पत्र में वादा किया कि सत्ता में वापसी पर जल प्रबंधन के लिए नए मंत्रालय का गठन करेंगे। सत्ता में आते ही प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने चुनावी वादे को अमली जामा पहनाते हुए जल संसाधन, नदी विकास और गंगा संरक्षण मंत्रालय के साथ-साथ पेयजल और स्वच्छता मंत्रालय का विलय कर नए जलशक्ति मंत्रालय का गठन कर दिया। मंत्रालय ने अपनी पहली बैठक में ही 2024 तक देश के हर घर तक 'नल से जल' पहुंचाने का महत्वाकांक्षी लक्ष्य तय कर दिया है। जिस देश में 82 फीसद ग्रामीण परिवारों की साफ पेयजल तक पहुंच न हो वहां पांच साल के अंदर 14 करोड़ घरों तक नल से जल पहुंचाना असंभव नहीं तो मुश्किल काम जरूर है। इसका कारण है कि देश के ग्रामीण इलाकों में स्वच्छ पेयजल की स्थिति बेहद गंभीर है। सरकारी आंकड़ों के मुताबिक देश के 22 फीसद ग्रामीण परिवारों को पानी लाने के लिए आधा किलोमीटर और इससे अधिक दूर पैदल चलना पड़ता है। इनमें से अधिकतर बोझ महिलाओं को ढोना पड़ता है। गांवों में 15 फीसद परिवार बिना ढके कुओं पर निर्भर हैं तो अन्य लोग दूसरे अपरिष्कृत पेयजल संसाधनों जैसे नदी, झरने, तालाबों आदि पर निर्भर रहते हैं। महज 18 फीसद परिवारों के पास ही पाइपलाइन से स्वच्छ पेयजल की सुविधा है। उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल, छत्तीसगढ़ और ओडिशा जैसे कुछ राज्यों में जलापूर्ति की स्थिति बेहद खराब है जहां पाइपलाइन

से आपूर्ति पांच प्रतिशत से भी कम है। अभी देश के एकमात्र राज्य सिक्किम के 99 फीसद घरों में नलों से जलापूर्ति की जाती है। इसके बाद गुजरात का स्थान है जहां 75 फीसद लोगों को पाइपलाइन से पेयजल मिलता है। जलापूर्ति की ऐसी स्थिति के बावजूद कई राज्य सरकारें केंद्र सरकार द्वारा राष्ट्रीय ग्रामीण पेयजल कार्यक्रम के तहत आवंटित धनराशि का भी उपयोग नहीं कर पाती हैं।

नीति आयोग ने 2018 में अपने दृष्टिकोण पत्र में बताया था कि 60 करोड़ भारतीय गंभीर जल संकट से जूझ रहे हैं। हर साल दो लाख लोग साफ पानी न मिलने से होने वाली बीमारियों के कारण मौत के मुंह में समा जाते हैं। अनुमान है कि 2030 तक देश में पानी की मांग आज की तुलना में दो गुनी हो जाएगी। यदि इसे पूरा नहीं किया गया तो इससे सकल घरेलू उत्पाद में छह प्रतिशत तक गिरावट आ सकती है। सबसे चिंता की बात यह है कि देश में 70 प्रतिशत जल भंडार प्रदूषित हो चुके हैं। इसका कारण केंद्रीय भूजल बोर्ड की भीमकाय परियोजनाएं हैं जिन्हें 1970 के दशक में भौगोलिक परिस्थितियों की उपेक्षा करके लागू किया गया जिनसे भूजल का तेजी से दोहन हुआ। यह विडंबना ही है कि जो देश चांद पर उपग्रह प्रक्षेपित कर चुका हो वहां की 82 फीसद ग्रामीण आबादी साफ पानी के लिए तरस रही है। ऐसा नहीं है कि आजादी के बाद गांवों में पेयजल पहुंचाने की योजनाएं नहीं बनीं। कई योजनाएं बनीं और धन का आवंटन भी हुआ, लेकिन जवाबदेही की कमी और भ्रष्टाचार के चलते नतीजे ढाक के तीन पात वाले रहे।

ग्रामीण इलाकों में पेयजल की समस्या दूर करने के लिए भारत सरकार ने पहला ठोस प्रयास 1986 में किया जब राष्ट्रीय पेयजल मिशन की शुरुआत की गई। आगे चलकर इसका नाम बदलकर राजीव गांधी राष्ट्रीय पेयजल मिशन कर दिया गया। इसके तहत ग्रामीण इलाकों में प्रतिदिन 40 लीटर सुरक्षित पेयजल मुहैया कराने का लक्ष्य रखा गया। इस कार्यक्रम को अपेक्षित सफलता न मिलने पर 2009 में राष्ट्रीय ग्रामीण पेयजल कार्यक्रम शुरू हुआ, लेकिन राजनीतिक-प्रशासनिक इच्छाशक्ति की कमी के चलते इसे भी सफलता नहीं मिली। 2014 में मोदी सरकार ने राष्ट्रीय ग्रामीण पेयजल कार्यक्रम को पुनर्गठित करते हुए इसे परिणामोन्मुखी और प्रतिस्पर्धी बनाया। इसका नतीजा यह हुआ कि जहां 2013-14 में गांवों में पाइपलाइन के जरिये पानी पहुंचाने की वृद्धि दर 12 फीसद थी वह 2017-18 में बढ़कर 17 फीसद हो गई। इस कार्यक्रम के तहत फरवरी 2017 में राष्ट्रीय जल गुणवत्ता योजना शुरू की गई। इसके तहत 2020 तक आर्सेनिक और फ्लोराइड प्रभावित 28,000 बस्तियों को साफ पानी देने का लक्ष्य है। इसके अलावा 2018-19 से 2022-23 तक पांच वर्षों के लिए विश्व बैंक के सहयोग से भूजल प्रबंधन के लिए 6,000 करोड़ रुपये की लागत से अटल भूजल योजना लागू की गई। इसमें उन इलाकों पर फोकस किया जा रहा है जहां भूजल का अतिदोहन किया गया है। राजनीतिक-प्रशासनिक प्रतिबद्धता और सतत निगरानी से हर घर तक नल से जल पहुंचाने में सरकार भले ही कामयाब हो जाए, लेकिन इन नलों से जलापूर्ति होती रहे इसके लिए अलग से प्रयास करने होंगे। गौरतलब है कि देश में औसत 117 सेंटीमीटर बारिश होती है जिसमें महज छह प्रतिशत का भंडारण हो पाता है। इसके अलावा कई तरह की भौगोलिक, तकनीकी और आर्थिक कठिनाइयां आएंगी जैसे ग्रामीण इलाकों में वोल्टेज के उतार-चढ़ाव से मोटर की खराबी, पाइपलाइन का रखरखाव, पानी का लीकेज। इसे देखते हुए नल से जल को पूरा करने के लिए सरकार ने लचीला दृष्टिकोण अपनाने का निश्चय किया है। इसके तहत भूजल और सतह के जल, दोनों का ही इस्तेमाल किया जाएगा जो क्षेत्र विशेष की परिस्थितियों पर निर्भर करेगा। सबसे बढ़कर इस योजना में आपूर्ति में संतुलन बनाए रखने के लिए जल संरक्षण पर जोर दिया जाएगा। इसके लिए सरकार जलदूतों की नियुक्ति करेगी।

(लेखक केंद्रीय सचिवालय सेवा में अधिकारी हैं)

response@jagran.com

ऊर्जा

परमात्मा

हमारे शास्त्रों में कहा गया है, बलहीन को परमात्मा नहीं मिलते। तो क्या जो लोग संसार में बलहीन हैं, उन्हें परमात्मा नहीं मिलते? वास्तव में ऐसा नहीं है। इसमें थोड़ी-सी गड़बड़ी है। बल क्या है? बल का अर्थ है एनर्जी। प्राकृतिक शक्ति जब जीव के लिए कार्य करती है, तब उस शक्ति को बल कहा जाता है, लेकिन आध्यात्मिक जगत में बल का अर्थ दूसरा है। जो अपनी सामर्थ्य का, अपनी शक्ति का जितना अंश उपयोग करता है, वह उतना ही अधिक बलवान है, उतना ही अधिक शक्तिशाली है।

एक कहानी भी है। समुद्र पर पुल बनाते समय जब हनुमान जी पहाड़ उठाकर लाए थे, तब गिलहरी भी रोड़ा लाई थी, वह तो पहाड़ ला नहीं सकी। इसका अर्थ यह नहीं है कि उसका कार्य छोटा था। हो सकता है कि उसका कार्य हनुमान जी के कार्य से बड़ा हो। अतः आध्यात्मिक शक्ति या मानसिक शक्ति या शारीरिक शक्ति के अनुसार कोई बलवान या निर्बल नहीं होता। इस संदर्भ में विचार करना है कि जिसके पास जितनी आध्यात्मिक शक्ति है, उसका वह कहां तक उपयोग करता है।

यहां जितने लोग हैं, उनमें कोई भी बलहीन नहीं है। जो शख्स अपनी मानसिक और शारीरिक शक्ति का उपयोग नहीं करता है, वह बलहीन है, वह परमपुरुष को नहीं पा सकता। आप लोग अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार थोड़ा बहुत तो कर रहे हो, अतः आप परमपुरुष बन सकते हैं। साधना प्रमादमुक्त यानी दोषमुक्त होनी चाहिए। साधना जहां प्रमादमुक्त होती है और जहां बल है, वहां सफलता की गारंटी है। जिन लोगों की साधना प्रमादमुक्त है, वे सफल सफल होंगे। आप लोग परमात्मा से साक्षात्कार करना चाहते हैं, जन्म-मरण से मुक्त होना चाहते हैं तो वह भी इसी जन्म में संभव है। हम भी यही चाहते हैं कि आप लोग इसी जीवन में अपना काम कर लें। दूसरे जन्म के लिए काम छोड़ना समय नष्ट करना है। हम ऐसा क्यों चाहेंगे कि आप लोगों का कीमती समय नष्ट हो। हम चाहते हैं, इसी जन्म में आप अपना काम कर लें। इसी जन्म में काम पूरा कर लेने की इच्छा होगी तो इसी जन्म में काम पूरा हो जाएगा। इससे अगले जन्म के लिए कुछ सद्कर्म संचित हो जाएंगे। मैंने पहले भी कहा था कि जय की चिंता तुम्हें नहीं करनी है जय तो तुम्हारी जेब में है।

श्रीश्री आनंदमूर्ति

राजनीति में धनबल का बढ़ता बोलबाला

रिजवान अंसारी

राजनीति में प्रत्येक नागरिक को समान रूप से अवसर तभी मिल सकेगा जब चुनाव में पैसे का खेल बंद होगा

एक गैर लाभकारी शोध संस्था 'सेंटर फॉर मीडिया स्टडीज' के अध्ययन में बेहद चौंकाने वाले तथ्य सामने आए हैं। अध्ययन के मुताबिक हालिया लोकसभा चुनाव में 55-60 हजार करोड़ रुपये खर्च किए गए। इतनी बड़ी रकम सुनने में किसी तिलिस्म से कम नहीं लगती और इस चकाचौंध में लोगों के जायज मुद्दे हमेशा दबते चले जाते हैं। सवाल है कि आगे की राह क्या हो? दरअसल व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए कि राजनीति में प्रत्येक नागरिक को समान रूप से अवसर मिले। यह तभी संभव है जब चुनाव में पैसे का खेल बंद होगा। इससे सभी वर्ग के लोगों को प्रतिनिधित्व का अवसर मिल पाएगा। लिहाजा देश के विकास में विभिन्न प्रकार की सोच को जगह मिल सकेगी। अगर ऐसा नहीं हुआ तो देश की राजनीति में एक ही वर्ग अर्थात धनी वर्ग का ही बोलबाला रहेगा और देश की अधिकांश आबादी राजनीति से वंचित रह जाएगी। जाहिर है इससे राजनीति का विकास कतई नहीं होगा, बल्कि देश की राजनीतिक शुचिता पतन की ओर अग्रसर हो जाएगी।

पिछले साल ही एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स यानी एडीआर द्वारा 16वीं लोकसभा के सांसदों पर किए गए अध्ययन ने भी चौंकाया था। जिन 521 सांसदों पर अध्ययन किया गया था उनमें से 430 सांसद करोड़पति थे। 32 सांसद तो ऐसे थे जिनके पास 50 करोड़ रुपये तक की संपत्ति थी। 16वीं लोकसभा सदस्यों की औसत संपत्ति 14.72 करोड़ रुपये थी। 17वीं लोकसभा ने तो पिछली लोकसभा के भी रिकॉर्ड तोड़ दिए हैं। एडीआर के मुताबिक नई लोकसभा में 475 सांसद करोड़पति हैं। हाल ही में आंध्र प्रदेश में हुए विधानसभा चुनाव ने तो सबको हैरान कर दिया है। इसमें जीते 94 फीसद विधायक करोड़पति हैं। जाहिर है भारतीय राजनीति पर धनकुबेरों का प्रभुत्व स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। समझना होगा कि असमानता चाहे राजनीतिक हो या आर्थिक, इसे पाटने की जिम्मेदारी सरकार की होती है। लिहाजा यह सरकार की जिम्मेदारी है कि वह पैसों के खेल पर अंकुश लगाने पर जोर दे और साफ-सुथरी चुनावी प्रक्रिया की संकल्पना लेकर आगे बढ़े।

गौर करें तो इस व्यवस्था से भ्रष्टाचार पर भी लगाम लग सकेगा। उम्मीदवारों को चुनाव में खर्च किसी व्यवसाय में निवेश से कम नहीं लगता। चुनाव में लाखों-करोड़ों रुपये का खर्च उम्मीदवारों को महत्वाकांक्षी बना देता है और उस खर्च को वे हर हालत में वापस पाना चाहते हैं। इसके लिए वे कई तरह के हथकंडे अपनाते हैं। लिहाजा यह सोच उन्हें चुनाव नतीजों से पहले ही भ्रष्ट बना देती है। पैसे के खेल पर अंकुश लगा कर अगर चुनावी प्रक्रिया को साफ-सुथरी बनाई जाए तो इससे भ्रष्टाचार को काफी हद तक कम किया जा सकता है। नो प्रॉफिट नो लॉस के तर्ज पर चुनाव लड़ने से जनसेवा की भावना को भी बढ़ावा मिल सकेगा। लिहाजा राजनीतिक शुचिता पर कोई सवाल भी नहीं उठा सकेगा। बहरहाल इस दिशा में हमें संजीदगी से सोचना ही होगा, अन्यथा धन अर्जित करना भारतीय राजनीति के लिए नासूर बन जाएगा और संविधान और लोकतंत्र की मूल भावना तक हमारी पहुंच दूर की कौड़ी साबित होगी।

(लेखक स्वतंत्र टिप्पणीकार हैं)

अतार्किक विरोध की मानसिकता

नकारात्मक राजनीति के नए संकेत शीर्षक से लिखे अपने लेख में राजीव सचान ने अतार्किक विरोध की जिस विपक्षी राजनीति को रेखांकित किया है, वह सदन के अंदर या बाहर सत्ता पक्ष का नीतिगत विरोध करने के बजाय केवल विरोध के लिए विरोध करने की विकृत मानसिकता है, जिससे बचा जाना चाहिए। लोकतंत्र में सत्ता पक्ष के साथ विपक्ष की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। एक जमाना था जब कुछ सुलझे हुए वरिष्ठ सांसद लोकसभा और राज्यसभा में विपक्ष की भूमिका को नीतिगत विरोध के रूप में तार्किक अंदाज में निभाते थे। सत्ता पक्ष उनकी बात को न केवल ध्यान से सुनता था, अपितु उस पर अमल भी करता था। ऐसे विपक्षी सांसद राष्ट्रहितैषी मुद्दों पर दलगत राजनीति से ऊपर उठकर सत्ता पक्ष के साथ रचनात्मक सहयोग करने में कभी पीछे नहीं हटते थे। अपने संसदीय जीवन में अधिकांश समय तक विपक्ष की भूमिका में रहने वाले अटल बिहारी वाजपेयी प्रधानमंत्री से अधिक एक सुलझे हुए विपक्षी नेता के रूप में इसीलिए याद किए जाते हैं, क्योंकि वे सत्ता पक्ष का नीतिगत और तार्किक विरोध करने के साथ-साथ राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय मुद्दों पर रचनात्मक सहयोग करने में संकोच नहीं करते थे, लेकिन आज विपक्ष की तस्वीर इससे उलट है, जिसमें प्रमुख विपक्षी दल के अध्यक्ष देश के प्रधानमंत्री को अतार्किक रूप से 'चोर' बताने में ही अपनी काबिलियत मानने लगे। यद्यपि देश की जनता को विपक्ष की यह नकारात्मक राजनीति रास नहीं आई। कांग्रेस सहित अन्य विपक्षी दलों को अपनी पराजय से यह सबक लेने की जरूरत है कि उनकी नकारात्मक राजनीति को अब यह देश बर्दाश्त नहीं करेगा।

pandeyvp1960@gmail.com

मेलबाक्स

वर्षा जल का संरक्षण

आज विश्व पीने के पानी की समस्या से जूझ रहा है। भविष्यवाणी की जा रही है कि तीसरा विश्व युद्ध पानी के लिए ही लड़ा जाएगा, लेकिन ऐसा क्यों? क्या वास्तव में प्राकृतिक जल हमारे पास नहीं है? अगर नहीं है तो बारिश के दिनों में ये बाढ़ से तबाही क्यों मचती है? इसका मतलब हमारे पास पानी की कमी नहीं है, बल्कि हम उसका संरक्षण नहीं कर पा रहे हैं। क्या आज के वैज्ञानिक उपलब्ध अथाह जल को उपयोग लायक बनाने का उपाय नहीं खोज पा रहे हैं? सभी को पता है कि वर्षा का जल नदी नालों द्वारा समुद्र में जाकर अनुपयोगी हो जाता है। क्या हमारे आधुनिक वैज्ञानिकों के पास इस अपार जन उपयोगी जल शक्ति को संरक्षित करने का कोई उपाय नहीं है? क्या हम बाढ़ आने वाली नदियों के समानांतर नहरें, नाले आदि बनाकर इस बह जाने वाले पानी को नियंत्रित नहीं कर सकते? जल संरक्षण हम डैम बनाकर भी तो करते हैं। जब हम जमीन के नीचे मेट्रो रेल बना रहे हैं, हजारों किलोमीटर लंबी गैस एवं तेल की पाइप लाइन जंगल, पहाड़ एवं समुद्र लांघ कर ला रहे हैं और चांद पर आवासीय कॉलोनी बसाने की ओर बढ़ रहे हैं तो फिर हम इस बह जाने वाले पानी को संरक्षित क्यों नहीं कर सकते हैं। जमीन के नीचे जलाशय बनाने से उपजाऊ जमीन भी खराब नहीं होगी। यह संग्रहित जल को खेती एवं पीने योग्य बनाकर उपयोग में लाया जा सकता है। इस प्रयास से भूजल